10

इस संसार में से

(2 कुरिन्थियों 12:1-12)

"... अपनी निर्बलताओं को छोड़, अपने विषय में घमण्ड न करूंगा" (12:5)।

एक प्रसिद्ध विचार के अनुसार वास्तविक मसीही की पहचान अनुभव का वह गुण है जिसे "इस संसार में से" कहा जा सकता है। ऐसा अनुभव आम तौर पर प्रामाणिक शिष्यता के चिह्न के रूप में नापा जाता, विश्लेषण किया जाता और प्रस्तुत किया जाता है। कई बार वे लोग जो इस बात से जिसे "इस संसार में से" कहा जाता है अपने मसीही जीवन की सच्चाई को दिखाने के लिए एक दूसरे के साथ अपने अनुभवों की तुलना करते हैं। धार्मिक ताक शो का अतिथि नई नौकरी दिलाने वाली प्रार्थना को परमेश्वर की उपस्थिति के परिमाण के रूप में दिखा सकता है। कई दायरों में मसीही जीवन की परख भावनात्मक उत्तेजना, सामर्थ की भावनाएं और उस जोश की अधिकता होती है जिससे लोग "चलते हैं।" एक परख जो आराधना के हर काल के लिए लागू होती है। वह यह बन जाती है कि क्या यह "इस संसार की" थी ?

हमारे विश्वास की वास्तविकता की यह विशेष परख हमें अपने प्रश्नों के लिए नये नियम की उपयोगिता बने रहने को का स्मरण दिलाती है, क्योंकि ऐसे ही प्रश्न कुरिन्थियों द्वारा खड़े किए जा रहे थे। जब पौलुस ने 2 कुरिन्थियों लिखा तो एक मसीही (10:7) के रूप में और मसीह के सेवक के रूप में (11:23) उसकी सच्चाई पर संदेह किया जा रहा था। कुछ लोगों ने यह देखकर कि वह कितना अप्रभावशाली है, "प्रमाण" मांगा कि सचमुच मसीह उसमें बात कर रहा है (13:3)। उन्होंने यह मान लिया कि ऐसा अप्रभावशाली वक्ता सम्भवतया आत्मिक आदमी नहीं हो सकता। यदि उसे आत्मा दिया गया था तो उनके विचार से "असली प्रेरित का कोई चिह्न" (तुलना 12:11, 12) उसकी सच्चाई को दिखाने के लिए स्पष्ट होना था। मसीह के सेवक के रूप में पौलुस की निष्कपटता पर स्पष्टतया उन लोगों द्वारा सवाल उठाया गया जिन्हें "बड़े प्रेरितों" (12:11) कहा जाता था। किसी ने सम्भवतया यह इनकार कर दिया होगा कि "असली प्रेरित के चिह्न" पौलुस में मिलते हैं, क्योंकि उसके विरोधी पौलुस के साथ "अपने आप की तुलना" करने और "अपने आपको मिलाने" पर संतुष्ट थे (तुलना 10:12)। पौलुस का यह ज़ोर की उसने "असली प्रेरित के चिह्न" दिखाए थे सुझाव देता है कि वह बचाव की मुद्रा में है। अन्यों ने अपने ही आश्चर्यकर्मों और चिह्नों पर घमण्ड किया है और अपने अनुभवों को पौलुस के अनुभवों से मिलाया है। उनके कई अनुभव "इस संसार के" थे। 5:13 में पौलुस का शब्द "हम बेशुद्ध" (*exestemen*) मूलतया "मसताना" है। कइयों के लिए प्रमाणिकता की परख मस्ती में और भावनात्मक अनुभव थी। इन "चिह्नों" से प्रमाणित होता था कि किसी

को परमेश्वर का आत्मा मिला है।

तीसरे स्वर्ग तक उठा लिया गया (12:1-6)

जो लोग मस्ती और भावनात्मक अनुभव के अधार पर दूसरों के आत्मिक होने की सच्चाई को परखते थे हमारे समय में भी उनके प्रतिनिधि थे। वे हम में पूछने पर विवष करते हैं। मसीही जीवन में ''इस संसार में'' अनुभव की क्या भूमिका है ? क्या हम यह मान लें कि यह हमारी निष्कपटता की परख है ? या हम हर प्रकार के भसावनात्मक अनुभव पर संदेह करके यह निष्कर्ष निकालें कि मसीही जीवन में इसकी कोई जगह नहीं है ? पौलुस का उत्तर हमें इन प्रश्नों का उत्तर देने में सहायता करता है।

12:1-6 की सामग्री पौलुस की लिखी किसी भी अन्य बात जैसी नहीं है। वह उन अनुभवों की बात लिखता है जो उसने और कहीं नहीं बताए। इस असामान्य सामग्री को देने का कारण स्पष्ट है: पौलुस इन अनुभवों की चर्चा केवल इसलिए करता है क्योंकि दूसरों ने उसे उनकी चर्चा करने को विवष किया है। वह जानता है कि ऐसी बातें करता घमण्ड करने जैसा है और ''इसका कोई लाभ नहीं'' (12:1)। वह कहता है, ''तुम ही ने मुझ से यह बरबस करवाया'' (12:11)। ऐसा घमण्ड करना मर्खता है (11:16, 17, 21), परन्तु इस परिस्थिति में आवश्यक है (12:1)। यदि औरों ने इस विषय पर ज़ोर न दिया होता तो पौलुस अपने जीवन के इन अंतरंग विवरणों को कभी न बताता। वह ''प्रभु के दर्शनों और प्रकाशनों'' का विषय केवल इसलिए उठाता है क्योंकि उसे अपने आलोचकों के घमण्ड का उत्तर घमण्ड से देना आवश्यक है।

12:1-10 पौलुस के पत्रों में विलक्षण होने के कारण हम में से कई लोग यह जानने पर चकित होते हैं कि पौलुस ने उन अनुभवों को जो ''इस संसार के'' हैं नकारा नहीं। ''प्रभु के दर्शन और प्रकाशन'' तो थे (12:1)। यह हवाला हमें उसके मन परिवर्तन के समय का स्वभाविक ही स्मरण कराता है जिसका वर्णन दर्शन (प्रेरितों 26:19) और प्रकाशन (गलातियों 1:12) दोनों में किया गया है। परन्तु पौलुस के असाधारण अनुभव उसके मन परिवर्तन के साथ खत्म नहीं हो गए। ''प्रकाशनों की बहुतायत'' थी (12:7), जिनमें से कुछ प्रेरितों के काम में लिखी गई हैं (9:12; 16:19; 18:9-11)। यह विषय हमें 1 कुरिन्थियों 14:18 का स्मरण दिलाता है, जहां पौलुस कहता है, ''मैं अपने परमेश्वर का धन्यवाद करता हूं कि मैं तुम सब से अधिक अन्य भाषाओं में बोलता हूं।'' पौलुस को मालूम था कि इसका अर्थ मसीह के लिए ''बेसुध'' होना है (5:13)। उसके आलोचकों का कोई इतना गहरा आत्मिक अनुभव नहीं था जिसका पौलुस को पता न हो।

यह कहना गलत नहीं है कि पौलुस के लिए ऐसे पल महत्वपूर्ण थे। वास्तव में वह दर्शन की एक विशेष घटना को स्मरण करता है जो न भूलने वाली है। यह असाधारण पल 2 कुरिन्थियों के लिखे जाने से चौदह वर्ष पूर्व घटा था (लगभग 42 ईस्वी)। पौलुस एक अनुभव की बात करता है जो बिल्कुल ''इस संसार से बाहर'' था। वह ''तीसरे स्वर्ग तक उठा लिया गया'' और ''स्वर्गलोक पर उठा लिया गया'' (12:2, 4)। अनुभव हमें हनोक (उत्पत्ति 5:24), एलिय्याह (2 राजाओं 2:11) की कहानियां स्मरण दिलाता है। ''उठा लिया गया'' के लिए यूनानी शब्द (*harpzao*) संकेत देता है कि इस पूरे अनुभव का आरम्भ पौलुस द्वारा नहीं किया गया था। ऐसे

निराले अनुभव उसके लिए आम थे। 2 कुरिन्थियों में वह उनकी ''बहुतायत'' की बात करता है। यह किसी विशेष तकनीक या तैयारी या सुझाव के पौलुस की अपनी किसी सामर्थ के द्वारा नहीं लाया गया था। इस शब्द का अक्षरशः अर्थ ''पकड़ा गया'' या ''ले जाया गया'' है। पौलुस को इसमें कोई संदेह नहीं था कि ''इस संसार में से'' इस अनुभव को देने के लिए परमेश्वर ने कार्य किया था।

पौलुस को जो बात सबसे अधिक याद थी वह यह थी कि उसने ''ऐसी बातें सुनीं जो कहने की नहीं; और जिन का मुंह पर लाना मनुष्य को उचित नहीं'' (12:4)। जो कुछ पौलुस ने सुना उसे बता पाना मनुष्य की क्षमता से बाहर था। पौलुस के शब्द हमें ''स्वर्गदूतों की बोलियां'' (1 कुरिन्थियों 13:1) और 1 कुरिन्थियों 12-14 के आत्मिक दानों के उसके पहले हवालों का स्मरण दिलाते हैं। उसने उन चीज़ों की भी बात की जो ''जो बातें आंखों ने नहीं देखीं और कान ने नहीं सुनी'' (1 कुरिन्थियों 2:9)। यह बातें परमेश्वर के आत्मा के द्वारा प्रकट की गई हैं, जो हमें परमेश्वर के मन को जानने की अनुमति देता है (1 कुरिन्थियों 2:11, 12)। कुछ बातें मनुष्य के कहने से बाहर थीं। पौलुस को कई दर्शनों और प्रकाशनों का अनुभव था परन्तु उनमें से एक विशेष तौर पर न भूलने वाला था। पौलुस की मसीही सेवकाई में अकथनीय आत्मिक बेसुधी के पल भी थे। वह भी उतना ही दावा कर सकता था जितना उसके आलोचक कर सकते थे।

स्वभावित है कि हम ऐसे व्यक्ति से जिसने ऐसी अद्‌भुत कहानी का अनुभव किया हो उसे इसे और विस्तार से बताने की उम्मीद करेंगे। उस पूरे अनुभव के विशलेषण के लिए एक पूरी पुस्तक समर्पित किया जाना हमारे लिए आश्चर्यजनक नहीं होगा। कैसा लगा होगा? कितनी देर तक रहा? परन्तु पौलुस के विवरण में विस्तार से बताए जाने का आकर्षण नहीं है। वह पीछे मुडकर अपनी शारीरिक उत्तेजनाओं को याद नहीं करता। (''न जाने देह सहित, न जाने देह रहित।'') उसे तो केवल इतना मालूम है कि उसे परमेश्वर द्वारा ''उठा लिया गया'' था। पौलुस ने अपनी आत्मिक प्राप्तियों पर घमण्ड करने के लिए रोज नामचा नहीं रखा हुआ था। जैसे उसने अपने बपतिस्मों का हिसाब नहीं रखा था (1 कुरिन्थियों 1:16) वैसे ही उसने अपने दर्शनों और प्रकाशनों का हिसाब नहीं रखा था।

पौलुस अपनी आत्मिक प्राप्तियों पर घमण्ड करने में असुविधा महसुस कर रहा होगा, जिस कारण वह ''मसीह में एक मनुष्य'' (12:2) और ''ऐसे मनुष्य'' (12:3) की बात करना चुनता है। ''ऐसा मनुष्य'' स्वयं पौलुस ही है, जैसा कि 12:7 से स्पष्ट होता है। परन्तु पौलुस जानता है कि यह महान पल उसके अपने नहीं हैं। ऐसा कोई कारण नहीं था कि उसने कुछ किया हो कि वह ''इस संसार से बाहर'' के अनुभवों को याद कर सके। जैसा कि 10:17 में उसने कहा, ''परंतु जो घमंड करे, वह प्रभु पर घमंड करे।'' पौलुस की मानसिक शक्ति या आत्मिक अनुभव के लिए उसकी विलक्षण क्षमता के कारण उसे ''प्रभु के दर्शन और प्रकाशन'' नहीं मिले थे बल्कि यह तो मसीह के साथ उसका सम्बन्ध था। इस कारण इन सभी अनुभवों पर घमण्ड करने वाली कोई बात नहीं थी! पौलुस अपने जीवन के इन पलों का वर्णन इसलिए करता है क्योंकि दूसरों ने इस विषय को उठाया है। वह उन अनुभवों को ''जिनका मुंह पर लाना मनुष्य को उचित नहीं'' यह कहने के लिए मिलाता है कि वह अपनी शिष्यता के प्रमाण के रूप में उन्हें नहीं देता है!

पौलुस ने कभी गहरे आत्मिक और भावनात्मक अनुभवों को नकारा नहीं। उसने हमेशा

सुझाव दिया कि दूसरों के सामने अपने अनुभवों की प्रदर्शनी लगाना सही नहीं है। ऐसे अनुभवों की समीक्षा करना और तुलना करना अनुपयुक्त होगा। उसने कहा, ''यदि हम बेसुध हैं, तो परमेश्वर के लिए; ...'' (5:13)। कुछ पल उसके और परमेश्वर के बीच में थे, पूरे समाज के लिए नहीं थे। ऐसे ही एक संदर्भ में पौलुस ने कहा कि जब मसीही लोग अन्य भाषाओं में बात करते हैं, तो वे परमेश्वर से बात करते हैं (1 कुरिन्थियों 14:2)। चाहे वह अन्य भाषाओं में बात करता था पर यह उसके और परमेश्वर के बीच का मामला था (1 कुरिन्थियों 14:18)। पूरी कलीसिया के होने पर वह अपने आत्मिक अनुभवों के प्रदर्शन के बजाय पांच बातें जो समझ आने वाली हों बोलना पसन्द करता था (1 कुरिन्थियों 14:19)।

पौलुस यह कहने को तैयार था कि ''उठा लिए'' जाने के असाधारण पलों का उसके जीवन में अपना स्थान था, परन्तु वह उन अनुभवों को अपनी प्रेरिताई के ''प्रमाण'' के रूप में देने को तैयार नहीं था। बिना शक उसके आलोचकों ने ''असली प्रेरित के लक्षण'' (12:12) होने का घमण्ड किया था। पौलुस उनके ''लक्षणों'' से मिलाने को तो तैयार था पर वह उसने अपने दावों के प्रमाण के रूप में उन्हें नहीं देना था। वह कहता है, ''ऐसे मनुष्य पर तो मैं घमण्ड करूंगा, परन्तु अपने पर अपनी निर्बलताओं को छोड़, अपने विषय में घमण्ड न करूंगा'' (12:5)। वास्वत में ''इस संसार के बाहर'' के अनुभवों का प्रमाण गुमराह करता है (12:6)। ऐसे दावे पेश करने वाले लोग या तो अपने आपको या दूसरों को भ्रमित करते हैं (11:13-15)। बहुत से लोग उस अनुभव का दावा कर सकते हैं जो ''इस संसार से बाहर'' है। किसी के चेले होने के प्रमाण के हर दावे को स्वीकार कर लेना असम्भव होगा।

हम मान सकते हैं कि जिसे ''प्रकाशनों की बहुतायत'' थी उसके पास बताने को और भी कई कहानियां होंगी। वास्तव में कई लोगों को हमें ऐसी कहानियों से बहलाना अच्छा लगता है। परन्तु पौलुस ऐसे घमण्ड करने से बचता है (12:6) क्योंकि वह इस प्रमाण से परखे जाने को चुनता है जो कुरिन्थियों के ध्यान में था (तुलना 10:7; 11:6)। पौलुस की प्रेरिताई का प्रमाण भावनात्मक अनुभव का चरम नहीं है, बल्कि वह रिकॉर्ड है जिसे वह पीछे छोड़ आया है। उसकी निर्बलता, जो कड़ी आलोचना का विषय थी, ने उसे जीवनों को बदलने से रोका नहीं था। जहां सुसमाचार पर विश्वास किया जाता और कलीसिया स्थापित होती है वहां परमेश्वर काम कर रहा होता है। हमारे शिष्य होने की अन्तिम परीक्षा वही है जिससे दूसरे लोग ''देख और सुन सकते हैं'' यानी सेवा के वे कार्य जिनसे दूसरों के लिए हमारा लगाव दिखाई देता है, और दूसरों के लिए अपने आपका इनकार करने के रिकॉर्ड, वे समय जब कलीसिया के जीवन के लिए हमारी वचनबद्धता को दूसरे लोग देख सकते हैं जो लोग चरम अनुभवों के होने की बात पर ज़ोर देते हैं वे अपनी ही भावनाओं से इतने आकर्षित हो सकते हैं कि वे दूसरों की आवश्यकताओं की अनदेखी कर दें।

पौलुस और उसके विरोधियों के चरम अनुभवों के विपरीत दावे इतने अद्भुत अनुभवों में भागीदारी की चुनौती देते हैं। तौभी हमारे सामने ऐसे सवाल खड़े होते हैं। हम ''पहाड़ी की चोटी के अनुभवों'' और ''बहा लिए जाने'' की बात करते हैं। हम पूछते हैं कि हमारे मसीही जीवन में भावनाओं का क्या स्थान है। कुछ लोग उस सारी आराधना को जो भावनाओं को आकर्षित करती है निराशा से देखते हैं। अन्य भावनाओं की परीक्षा के लिए सब धार्मिक अनुभवों को दे देते हैं

और मांग करते हैं कि यह ''इस संसार से बाहर'' हो। इस प्रश्न के लिए पौलुस का उत्तर हमारे लिए उपयुक्त है। चरम अनुभव के लिए एक स्थान है परन्तु यह हमारी मसीहियत की अन्तिम परीक्षा कभी नहीं रही। भावनाएं हमें भ्रमित कर सकती हैं। परन्तु एक बड़े हुए समय तक प्रेम पूर्वक सेवा की पौलुस की परीक्षा हमें धोखा नहीं देगी।

एक और अनुभव: सामर्थ और निर्बलता (12:7-10)

परमेश्वर की सामर्थ की उपस्थिति के लिए और हमारी शिष्यता के वास्तविक होने के लिए आम तौर पर दिए जाने वाले ''परिणामों'' में से एक यह प्रमाण है जो उन प्रार्थनाओं के लिए दिया जाता है जिनका उत्तर मिल चुका है। कई लोग सुझाव देते हैं कि हम उन निश्चित बातों की ओर ध्यान दिला सकते हैं जो हमारे धर्म ने हमारे लिए की हैं। प्रार्थना के उत्तर में हमें आम तौर पर बताया जाता है। परमेश्वर आर्थिक सफलता के रास्ते खोलता है और हमें स्वास्थ्य और मन की शांति देना सुनिश्चित करता है। वास्तव में कई घटनाओं में लोगों ने अपने विश्वास की सच्चाई को साबित करने के लिए परिणामों की तुलना की है।

कोई मसीही इस बात से इनकार नहीं करेगा कि परमेश्वर प्रार्थना को सुनता और उत्तर देता है। परन्तु यह सम्भव है कि हम प्रार्थना को गलत समझें और इसे अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए जादू का कोई फार्मूला मान लें। अपने चर्म अनुभवों पर घमण्ड करने के साथ अपने आकर्षण में पौलुस के आलोचकों ने प्रार्थना के अद्‌भुत प्रभावों पर भी घमण्ड किया होगा। हमें यह पता नहीं है कि उन्होंने क्या दावा किया, पर प्रार्थना के अपने ही जीवन का पौलुस का विवरण यह सुझाव देता है कि वह फिर से उनके घमण्डों से मुकाबले को तैयार है। उन्होंने प्रार्थना का वर्णन ऐसे समय के रूप में किया होगा जब वे एक विशेष प्रकार से परमेश्वर की सामर्थ का अनुभव पाते हैं।

पौलुस अपनी कहानी का आरम्भ अपने जीवन की एक और घटना को याद करता है जो इसके बिना हमें पता न चलती। वह बताता है कि उसका समीही जीवन केवल चरम अनुभवों से नहीं बना। उसे अत्याधिक लचीला होने से रोकने के लिए परमेश्वर ने ''मेरे शरीर में एक कांटा'' भेजा ताकि मैं फूल न जाऊं (12:7)। परमेश्वर उसे स्वर्गलोक की मस्त उंचाइयों ने पृथ्वी पर पीड़ा की वास्तविकताओं तक ले गया था। वहीं जिसे ''उठाया गया'' था उसे ही पीड़ा के द्वारा दीन कर दिया गया। यह पीड़ा मस्ती के पल को संतुलन में रखती थी। यद्वपि सुझाए गए फल कई हैं, परन्तु हम नहीं जानते कि पौलुस के ''शरीर में कांटा'' क्या था। सम्भावनाओं में या तो बोलने की बाधा (तुलना 10:10) या आंख का रोग (तुलना 4:15) था। आरम्भिक कलीसिया में कुछ लोगों का विचार था कि पौलुस की बिमारी मिर्गी की थी। ऐसे अनुमान सम्भवतया व्यर्थ हैं। हम इतना जानते हैं कि ''शरीर में चुबोया गया कांटा'' से पौलुस को शारीरिक और भावनात्मक पीड़ा दोनों मिलीं। RSV में दिए गए शब्द ''सताना'' का अर्थ ''घूंसे से मारना'' था। आम तौर पर इसका इस्तेमाल तापनों के लिए किया जाता था (तुलना 1 पतरस 2:20)। इसका अर्थ पौलुस के शारीरिक स्वास्थ्य पर सताव के प्रभाव हो सकता है। इस संदर्भ में ''शरीर में कांटा'' पौलुस की शारीरिक दुर्बलता का एक उदाहरण था, अर्थात वह सीमा जिससे कई लोग उसे बदनाम करने के लिए काफ़ी समझते थे। ''दिमाग की सुनना'' के बड़े अनुभवों को अनुमति देना और ''बडे

प्रेरितों'' (10:12से) फूल जाना उसके लिए आसान होना था। उसके विपरीत शारीरिक पीड़ा ने उसे उसकी दुर्बलता और परमेश्वर के अनुग्रह पर निर्भरता का स्मरण दिलाया।

पीड़ा का उसकी उस बड़ी विजय की बात बताने के लिए जो प्रार्थना से मिली हम पौलुस की आत्मिक शक्ति की अपेक्षा कर सकते हैं। वास्तव में इस संदर्भ में हम पौलुस को एक और बड़ी आत्मिक विजय के उदाहरण से जोड़ने की उम्मीद कर रहे हैं। अन्यों ने उन पलों के अपने अर्थ दिए होंगे जब वे बड़ी रुकावटों पर काबू पाने के लिए प्रार्थना के द्वारा योग्य हो गए। परन्तु जो बात 12:7, 8 में हमें चकित करती है वह यह है कि पौलुस ऐसी कोई कहानी नहीं बताता। यदि उसके पाठक उससे आसान समाधानों और प्रार्थना के द्वारा प्रभावशाली सामर्थ की बात बताने की उम्मीद कर रहे थे, तो वे निराश हुए। ''इस के विषय में मैं ने प्रभु से तीन बार बिनती की, कि मुझ से यह दूर हो जाए'' (12:8)। उत्तर पहली या उसकी दूसरी प्रार्थना पर नहीं आया। ''तीन बार'' प्रार्थना की विशेष तीव्रता का सुझाव देता है (तुलना मरकुस 14:32-39)। जबकि कोई तवरित या जादू वाला उत्तर नहीं है।

''शरीर में कांटा'' के सम्बन्ध में पौलुस की विनकी का उत्तर कभी उसकी विनती के अनुसार नहीं दिया गया। उसे केवल यही उत्तर मिला कि ''मेरा अनुग्रह तेरे लिए बहुत है; क्योंकि मेरी सामर्थ निर्बलता में सिद्ध होती है'' (12:9)। वह कमज़ोर स्वास्थ्य में अपने मिशनरी परिश्रमों को जारी रखने को विवश था। उसने कई बार सोचा होगा कि उसका प्रभाव तभी बड़ सकता है यदि उसका स्वास्थ्य बेहतर हो। वह अपने व्यक्तिगत व्यक्तित्व और अपने दम से और लोगों को तभी प्रभावित कर सकता है यदि वह बड़ी सामर्थ को दिखा सके! तौभी पौलुस उन प्रार्थनाओं की ओर ध्यान नहीं दिला पाया जिन से परमेश्वर की सामर्थ पर ''प्रमाण'' दिया गया।

गलातियों 4:13 में पौलुस की कमज़ोर सेहत का एक और हवाला है जहां वह कहता है ''पर तुम जानते हो कि पहले-पहले मैंने अपनी शरीरता की निर्बलता के कारण तुम्हें सुसमाचार सुनाया।'' हम उस पहले मिशनरी प्रचार की परिस्थितियों को नहीं जानते परन्तु हम इस तथ्य से प्रभावित होते हैं कि गलातियों को कभी सुनने का अवसर न मिलता यदि वह बीमार न होता। परमेश्वर उसे थोड़ी देर के लिए उसे उसकी बीमारी के कारण इस्तेमाल कर पाया था! वह शारीरिक बीमारी पौलुस को रोक नहीं पाई। इसलिए केवल उसकी समयसारणी को बदला और उससे अपनी योजनाओं को बदलवाया।

''शरीर में कांटा'' सहने के इस अनुभव के दौरान ही पौलुस ने एक महत्वपूर्ण सबक सीखा। हमारी मसीहियत का ''प्रमाण'' हमारे चरम अनुभवों में या उन घटनों में नहीं जहां प्रार्थना ने ''काम किया।'' यह अनुभव हमें अपनी प्राप्तियों पर घमण्ड करना सिखाते हैं। सच्चा मसीही जानता है कि वह अपने ऊपर नहीं बल्कि परमेश्वर के अनुग्रह पर निर्भर है। 12:9 में ''मेरा अनुग्रह तेरे लिए बहुत है; क्योंकि मेरी सामर्थ निर्बलता में सिद्ध होती है।'' परमेश्वर पौलुस को उसकी निर्बलता के बावजूद नहीं बल्कि उसकी निर्बलता के कारण इस्तेमाल कर पाया।

भूमध्य संसार के पूरे इलाके में कलीसियाओं के होने से बढ़कर परमेश्वर की सामर्थ का चिह्न नहीं था। ऐसे संसार में जो दिखाई देने वाली आडम्बरी और शारीरिक सामर्थ की सराहना करने वाले संसार में एक अप्रभावशाली व्यक्ति द्वारा स्थापित ये कलीसियाएं इस बात का प्रमाण थी कि परमेश्वर की सामर्थ मनुष्य की निर्बलता के बीच में थीं। यदि इन कलीसियाओं को

बनाने वाले में सामर्थ के सामान्य ''प्रमाण'' थे तो कई लोग संसार में परमेश्वर की सामर्थ के काम करने को देख नहीं पाए थे। उन्होंने निष्कार्ष निकाला होगा कि संसार में मानवीय सामर्थ ही काम कर रही है।

यह बात ध्यान खींचने वाली है कि पौलुस ने इस संदर्भ में अपने ही अनुभव के दो बिल्कुल अलग विवरण रख दिए। एक घटना में अद्‍भुत आत्मिक सामर्थ के क्षणों की बात थी। दूसरी में एक आत्मिक अगुवे के लिए ''परेशान करने वाली असफलता'' का वर्णन। पौलुस की सत्यता का ''प्रमाण'' बाद वाली है, क्योंकि वह अपनी निर्बलता को छोड़ किसी और बात पर घमण्ड नहीं करेगा। 12:5 में उसने कहा कि उसे ''ऐसे मनुष्य'' पर घमण्ड करने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि वह तो केवल अपनी निर्बलता पर घमण्ड करना चाहता था। 12:9 में वह इसी विचार को दोहराता है: ''इसलिए मैं बड़े आनन्द से अपनी निर्बलताओं पर घमण्ड करूंगा कि मसीह की मुझ पर छाया रहे।''

निर्बलता और सामर्थ (12:10-12)

हमें यह मानना पड़ेगा कि निर्बलता और सामर्थ के लिए पौलुस का ढंग हमारी स्वाभाविक इच्छाओं के विपरीत था। हम तो यह कहना पसन्द करेंगे कि ''जब मैं बलवान होता हूं तभी मैं बलवान होता हू,'' क्योंकि हमारी संस्कृति का यही मानक है। हम स्वाग्रह पर पुस्तकों के बारे में जानते हैं कि वे इसलिए प्रसिद्ध होती हैं क्योंकि वे सामर्थ के साथ हमारा ध्यान खींचती हैं। यदि हमारी स्वाभाविक प्रवृतियां हमारे मसीही जीवन को प्रभावित करती हैं, तो हम अपनी सेवकाई को इस पहलू में देखेंगे। जब हम किसी सफल सेवक या सफल कलीसिया पर विचार करते हैं तो हम सामर्थ और प्रभाव के प्रतीकों कभी भी देखेंगे। हम एक ऐसे प्रबन्ध को प्रोत्साहित कर सकते हैं जहां सेवकों और कलीसिया के अगुओं को उन परणिामों की तुलना करने को विवशय किया जाता है जो उनके संसाधन भरपूर होने की ओर संकेत करती हैं। हम यह मानने के प्रलोभन में पड़ सकते हैं कि जब हम हमारे पास सामर्थ के प्रतीक अर्थात भव्य इमारत, आधुनिक सम्मान, सबसे रचनात्मक अधिकारी और बड़े-बड़े सदस्य न हों तब तक हमारी सेवकाई वास्तविक नहीं है। निश्चित रूप से अच्छी सुविधाएं होना और गुणी लोगों का होना उपयुक्त है। परन्तु यदि हम यह निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि परमेश्वर की सामर्थ के प्रभावी होने के लिए हमारी सामर्थ का होना आवश्यक है तो हम अपने आपको धोखा देते हैं।

अपने समय के मानकों के अनुसार यीशु और उसके चेले पूरी तरह से शक्तिहीन थे। क्रूस मानवीय निर्बलता का प्रतीक था। परन्तु क्रूस पर उसकी निर्बलता पुनरुत्थान की सामर्थ के लिए अवसर था। पौलुस कहता है, ''वह निर्बलता के कारण क्रूस पर चढ़ाया तो गया, तौभी परमेश्वर की सामर्थ से जीवित है'' (13:4)। उसकी निर्बलता में से परमेश्वर की सामर्थ निकली। वास्तविक शिष्यता में हम इस बात को अनदेखा नहीं कर सकते कि निर्बलता ही सामर्थ है। अपने ''शरीर में कांटा'' से पौलुस ने सीखा कि परमेश्वर की सामर्थ निर्बलता में ही सिद्ध होती है (12:9)। इसी कारण वह ''निर्बलताओं के साथ, अपमानों के साथ, निराशाओं के साथ, सतावों के साथ, कठिनाइयों के साथ'' संतुष्ट था। वह निष्कर्ष निकालता है, ''... क्योंकि जब मैं निर्बल होता हूं, तभी बलवन्त होता हूं'' (12:10)।

सफल सेवकाई के पहचान क्या है? सफल सेवकाई को वहां देखा जा सकता है जहां क्रूस और पुनरुत्थान के आश्चर्यकर्म को दोहराया जाता है। जब हमारी निर्बलता परमेश्वर की सामर्थ को काम करने का अवसर देती है तो हम सफल कलीसिया बन जाते हैं। 12:10–13 यह प्रभावशाली है कि पौलुस बार–बार उसी निर्बलता का घमण्ड करता है जिसके लिए उसकी आलोचना हुई थी (11:30; 12:5, 9; तुलना 13:4)। उसके आलोचकों ने ''असली प्रेरित के लक्षणों'' (12:12) को गलत देखा था।

सारांश

शायद हम अक्सर पौलुस के आलोचकों की जगह खड़े होकर, सच्ची मसीहियत के गलत चिह्नों को देख रहे होते हैं। चरम अनुभव अधिक प्रभावशाली और उत्तेजित करने वाले हैं। बेशक वे बाहर वाले व्यक्ति के लिए अधिक आकर्षक हैं। पौलुस की तरह वे हमें न भूलने वाली यादें देते हैं। परन्तु सच्ची कलीसिया ''इस संसार से बाहर'' नहीं रहती। इसकी वफ़ादारी की अन्तिम परीक्षा पीड़ा और परेशानी में रहने और जहां हम शारीरिक कमज़ोरियों और परेशानी से जुझते हैं, वहां रहने की उसकी इच्छा है। ये ''संसार में'' ही हैं।